◆ भारतीय संस्कृति ◆

संस्कृत-हिन्दी
महत्त्वपूर्ण क्यों, प्रचार कैसे हो?

डॉ. शिवकुमार ओझा

Scanned by CamScanner

विषय सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	**अपनी बात**	7
2.	**विशिष्ट गुणों से युक्त संस्कृत-हिन्दी भाषाएँ**	13
2.1	विशेष गुणों से युक्त अक्षरों की वर्णमाला	15
2.2	विशेष गुणों से युक्त शब्द भण्डार	24
2.3	भारतीय भाषाओं का वैज्ञानिक स्वरूप	34
3.	**हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं के प्रचार के उपाय**	39
3.1	भाषा का लेखन व प्रयोग अधिक-से-अधिक होना	39
3.2	शब्दों के यौगिक एवं रूढ़ अर्थों का जानना	40
3.3	पर्यायवाची शब्दों के अर्थों की सूक्ष्मता समझना	41
3.4	शब्दों की पवित्रता बनाये रखना	42
3.5	शुद्ध उच्चारण करना	43
3.6	हिन्दी का आधार संस्कृत भाषा को न छोड़ना	47
3.7	शब्दकोश अधिक उपयोगी बनाना तथा रखना	48
3.8	आविष्कर्ताओं को श्रद्धा-सुमन अर्पित करना	50
3.9	हिन्दी भाषा के प्रति स्वाभिमानी होना	52
3.10	हिन्दी के प्रचारकों का सत्कार करना	54
3.11	भारतीय संस्कृति के प्रति जागरूक रहना	54

Scanned by CamScanner

1

अपनी बात

आधुनिक युग की एक विशेषता यह भी है कि आजकल विचार विनिमय बड़ी शीघ्रता से जनसाधारण में प्रसारित हो जाया करते हैं। जिन विचारों, समाचारों, या चर्चाओं के प्रसारण में पहले कई-कई दिन, सप्ताह या माह लग जाते थे, आज वही कुछ क्षणों में बड़ी प्रखरता से रेडियो या रंगीन चलचित्रों सहित प्रसारित होते रहते हैं। इन प्रसारणों को सुनने या देखने वालों की संख्या में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। अब यह अधिक आवश्यक हो गया है कि हम विचारों या चर्चाओं को और प्रभावी बनाने के लिए उन्हें युक्तिपूर्वक, तर्कों एवं प्रमाणों सहित प्रस्तुत करें।

हम भारतीय यदाकदा कहते फिरते हैं कि हमारी संस्कृत भाषा या अन्य भारतीय भाषाएँ सर्वश्रेष्ठ हैं, हमारी संस्कृति सर्वोत्कृष्ट है, भारत महान् है इत्यादि। इन कहने वालों से यदि इन कथनों को सिद्ध करने को कहा जाये, तो उन्हें प्राय: कठिनाई हो जाती है। बात सच है किन्तु हम उसे समुचित रीति से सिद्ध करने में असफल रहें, तो यह एक दैन्य स्थिति को जन्म देती है। ऐसे समाज की विश्वसनीयता भी न्यून हो जाती है जो अपने कथनों की सत्यता को सिद्ध न कर सके। हमारा निश्चयात्मक रूप से यह मानना है कि पाश्चात्य प्रभाव ने एवं अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षा के प्रसार ने हमारी चिन्तनशैली पर कुठाराघात किया है। हमारा चिन्तन जो युक्तियुक्त, प्रामाणिक, गहन, सूक्ष्म एवं विस्तृत हुआ करता था वह आज बिखर गया है, स्थूल व संकुचित हो गया है, कूपमण्डूक-सा लगता है। निश्चयात्मक बुद्धि वाला भारत अब संशयात्मक बुद्धि का हो गया है। भारतीय जनमानस में भटकाव आया है। इसके कारण हम शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित सत्य के प्रति सशंकित हो गये हैं और हमारा भटकाव हमें अन्धकार की ओर ढकेल रहा है, जो प्राय: अपना प्रभाव दिखलाता रहता है। अपनी बात को

Scanned by CamScanner

पुष्ट एवं सुस्पष्ट करने के लिए हम निम्न पंक्तियों के प्रथम दो परिच्छेदों में दृष्टान्तों द्वारा समझाने का प्रयत्न करेंगे।

क्या हम अविकसित देश हैं ?

संसार के बुद्धिजीवियों ने विश्व के देशों को दो श्रेणियों में बाँटा है जिन्हें वर्तमान में ''विकसित देश'' (Developed Country) और ''विकासशिल देश'' (Developing Country) नामों से व्यवहृत किया जाता है। यहाँ यह भी हम बता दें कि प्रारम्भ में ''अविकसित देश'' (Underdeveloped Country) शब्द का प्रयोग हुआ था। किन्तु तत्पश्चात् कुछ शिष्ट (Polished) भाषा का प्रयोग करते हुए उसी को अब ''विकासशील देश'' कहा जाने लगा। भारत को ''विकासशील देश'' की श्रेणी में रखा गया है जिसका शब्दार्थ हुआ कि भारत प्रत्येक क्षेत्र में विकास करने के लिए प्रयत्नशील है। किसी देश के विभिन्न क्षेत्रों के अन्तर्गत आते हैं खनिज पदार्थ, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, संस्कृति, भाषा इत्यादि। अब हम उन बुद्धिजीवियों से पूछना चाहेंगे कि हमारे खनिज पदार्थ, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि उन बहुत से देशों से क्या कम हैं जिन्हें ''विकसित देश'' की संज्ञा देकर सुशोभित किया गया है। क्या हमारी संस्कृति सर्वोकृष्ट नहीं और क्या हमारी भाषा सर्वश्रेष्ठ नहीं है? वास्तविकता यह है कि हम इन सभी में सर्वश्रेष्ठ हैं। हमारी विशेषता यह भी रही है कि हम पहले कभी निर्धन नहीं थे बल्कि अत्यन्त धनवान् थे जिसके कारण विदेशी ताकतें हमें लूटने आया करती थीं, क्योंकि निर्धन को लूटने कोई नहीं जाता। हमें स्वार्थी एवं भ्रष्ट अपनों ने भी लूटा है और इस लूटे हुए धन को विदेशों में जमा करके रखा हुआ है। यह सभी लूट का धन जो भारत का ही है यदि भारत को वापस मिल जाये तो हम आज भी निर्धन नहीं हैं। विडम्बना (लज्जा) की बात यह है कि फिर भी हमारे बुद्धिजीवियों ने अपने को ''विकासशील'' कहलाना बड़ी सहजता से स्वीकार कर लिया, कहीं किसी प्रकार का विरोध नहीं किया गया। वर्तमान काल में हमको अधिक-से-अधिक ''आर्थिक रूप से विकासशिल देश''(Financially Developing Country) कहा जा सकता था। ''विकासशिल'' शब्द से पहले ''आर्थिक रूप से''

Scanned by CamScanner

(Financially) शब्द अवश्य ही लगाया जाना चाहिए, अन्यथा हमारे बालकों व नवयुवकों का अन्तर्मन समझेगा कि वे सभी क्षेत्रो में अविकसित हैं और इस प्रकार के विचार हीनभावना को जन्म देंगे। शब्दों का चयन उचित ढंग से होना चाहिए, अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए किया जाना चाहिए क्योंकि शब्द प्रभावशाली होते हैं जो जनमानस को विचलित भी कर सकते हैं। प्रश्न उठता है कि हमने अपने को ''आर्थिक रूप से विकासशिल देश'' के स्थान पर केवल ''विकासशिल देश'' कहलवाना क्यों स्वीकार किया? इसके उत्तर में हम यही कह सकते हैं कि यह विदेशी विचारों व शिक्षा का प्रभाव है जिसने हममें, अपनी सांस्कृतिक अज्ञानता के कारण, विक्षेप (भटकाव) पैदा किया है, संवेदनहीन बनाया है तथा जिन विचारों के प्रति हमें गम्भीर होना था उनके प्रति उदासीन हुए हैं।

क्या परम्परागत भारत भौतिक आविष्कारों के प्रति उदासीन रहा है ?

आधुनिक भारतीयों द्वारा विश्वास के साथ प्राय: यह कहा जाता है कि भारत के अध्यात्म-ज्ञान के साथ हमें पाश्चात्य विज्ञान (Science) को भी अपनाना चाहिए। क्योंकि इसके कारण विभिन्न प्रकार के भौतिक साधनों (उपकरणों) का आगमन हुआ जिसने मानवीय दैनिक जीवन-यापन को मधुर बनाया है। यह कथन इस अवधारणा पर आधारित है कि परम्परागत भारतीय चिन्तन केवल मोक्ष की ही बात करता है, भौतिक समाधानों की उपेक्षा करता रहा है। ऐसी अवधारणा हमारे सांस्कृतिक अज्ञान के कारण हुई है। भारतीय संस्कृति (वैदिक संस्कृति) में सांसारिक पदार्थों के प्रति बहुत गहन एवं सूक्ष्म चिन्तन हुआ है। भौतिक ज्ञान को अविद्या की श्रेणी तथा आध्यात्मिक ज्ञान को विद्या की श्रेणी में रखकर ईशावास्योपनिषद् (मन्त्र 9, 10 और 11) में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है – ''जो लोग अविद्या को ही पूजते हैं वे गहन अन्धकार में प्रवेश करते हैं और मानों उससे भी अधिक अन्धकार में वे लोग गिरते हैं जो विद्या में ही रमते हैं। विद्या से एक प्रकार का फल मिलता है और अविद्या से अन्य प्रकार का। जो पुरुष विद्या और अविद्या दोनों एक साथ जानता है वह

Scanned by CamScanner

अविद्या के द्वारा मृत्यु को पार करके विद्या के द्वारा अमृतत्व को प्राप्त होता है।'' इसके अतिरिक्त भी हम देखते हैं कि पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत रखकर अर्थ (अर्थात् धन, सम्पत्ति आदि भोग के सभी साधन) और काम (भोग के सभी साधनों को भोगने की शक्ति) को बहुत महत्त्व दिया गया है क्योंकि यह दैनिक जीवनयापन के लिए अति आवश्यक हैं। संसार में श्रेयस् की प्राप्ति की यात्रा अबाधरूप से चलती रहे, इसलिए केवल इतना ही नियन्त्रण रखा गया है कि अर्थ और काम अर्जित करने की विधि धर्मानुकूल (अर्थात् शास्त्र द्वारा प्रतिपादित कर्त्तव्य-कर्मों के अनुकूल) होनी चाहिए, स्वच्छन्द मनोनुकूल नहीं। हमारे आर्ष-ग्रन्थों में अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए सदैव उद्यमी (चरैवेति-चरैवेति) रहकर भगवान् से प्रार्थना भी की गयी है। केवल कुछ ही शताब्दियों पूर्व भारत की प्रौद्योगिकी विश्वप्रसिद्ध थी। अधिकांश आधुनिक विज्ञान का प्रयाण लगभग चार सौ (400) या पाँच सौ (500) वर्ष ही पुराना माना जा सकता है। इन वर्षों में विदेशी आक्रमणकारियों, लूटरों तथा पारस्परिक अन्तर्कलह के कारण भारत की आर्थिक स्थिति बिगड़ती गयी और हम निर्धन होते चले गये। इसके कारण भारत के भौतिक विकास की धारा में अवरोध हुआ, परतन्त्रता के कारण प्रौद्योगिकी विकास न हो सका और हमारा मौलिक चिन्तन विक्षिप्त हुआ। हमारी विवेकशीलता का पतन हुआ, स्थूल विचारों को सूक्ष्म मानने लगे और भाषा के भी सूक्ष्म तत्त्वों का अनुसन्धान अवरुद्ध हो गया।

भाषा मानव-जीवन या समाज के लिए एक महत्त्वपूर्ण विषय है। भारतीय ऋषियों ने मनुष्य के लिए महत्त्वपूर्ण एवं श्रेयस्कर ज्ञान को अपनी पराकाष्ठा तक पहुँचाने का प्रयत्न किया था। इस बात का ध्यान रखा गया था कि मनुष्य की सीमित बुद्धि बहुत-कुछ बातों (पदार्थों) का अनुसन्धान नहीं कर सकती, इसलिए इन्द्रियातीत विषयों पर विशेषरूप से विचार किया गया था। भाषा उनमें से एक ऐसा ही विषय है, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि प्रत्येक मानव का चिन्तन-मनन, अध्ययन-अध्यापन, वाद-विवाद, शिक्षा, वार्तालाप आदि किसी-न-किसी भाषा में ही होता है। भाषा के

Scanned by CamScanner

बिना मनुष्य का किसी भी भौतिक या अभौतिक पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है। इसलिए भारतीय ऋषियों ने सर्वप्रथम भाषा का ही अनुसन्धान करके संस्कृत भाषा का उद्घाटन किया। संस्कृत भाषा का आश्रय पाकर कालान्तर में विभिन्न सामयिक या प्रादेशिक कारणों से भारत में अन्य भाषाओं का प्राकट्य हुआ।

विश्वसमुदाय हमेशा से भाषा को केवल वाणी द्वारा मानवीय अभिव्यक्तियों का साधनमात्र ही समझता रहा है, अन्य कुछ नहीं। हमारे ऋषियों ने भाषा को केवल वाणी की अभिव्यक्ति ही नहीं माना है प्रत्युत उसके द्वारा मनुष्य की प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत करने का साधन भी प्रशस्त किया है। शास्त्रों में शब्द अभिव्यक्ति की चार अवस्थाओं का वर्णन है – परा,पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। इन चार अवस्थाओं में से केवल वैखरी ही कानों से सुनी जा सकती है, अन्य तीन सूक्ष्मतर होती जाती हैं, परा अत्यन्त सूक्ष्म है। हमारे ऋषियों ने संस्कृत भाषा को अपनी पराकाष्ठा तक पहुँचाया है। अर्थात् इस भाषा को मन्त्रों द्वारा विभिन्न भोगों की प्राप्ति, अन्त:करण की शुद्धि, योग की सिद्धि आदि का भी साधन बनाया है जिसका प्रचलन आज भी यदाकदा कहीं-कहीं भारत में तथा अन्यत्र भारतीयों में विद्यमान है। इसी संस्कृत भाषा और उससे सम्बन्धित हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं की विशिष्टता एवं उसके यथार्थ प्रचार के विषय में प्रस्तुत पुस्तिका के माध्यम से हमने अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है। हमारा मानना है कि इस पुस्तिका में प्रदर्शित विभिन्न बिन्दुओं का ज्ञान प्रत्येक भारतीय विद्यार्थी को अवश्य ही होना चाहिए। इससे उनमें भारतीय भाषाओं के प्रति, अपने ऋषियों एवं देश के प्रति स्वाभिमान बढ़ेगा।

आधुनिक समय में अपने जीवनोपाय व राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान की उत्कंठाओं का हनन हुआ है। यह गिरते हुए स्वाभिमान व आत्मविश्वास का ही प्रतिफल है कि हम विदेशियों की अंधाधुंध नकल करने में तत्पर हो गये हैं। पोशाक, खानपान, क्रीड़ा, तर्क, हावभाव प्रदर्शन इत्यादि सभी प्रसंगों में हमने अपने जीवन को विदेशी बनाकर रख दिया है, अपने को

Scanned by CamScanner

विकृत किया है। हम स्वाभिमान हीन होते जा रहे हैं, अपने जीवन व राष्ट्र को बरबादी के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है।

मनुष्य के ज्ञान का प्रथम सोपान भाषा ही होती है जिसका प्रारम्भ शिशु काल से हो जाता है। जिस समाज का प्रथम सोपान ही दृढ़, विलक्षण, विशिष्ट गुणों से युक्त एवं वैज्ञानिक हो, उस समाज के अगले सोपान (चिंतन-मनन, विचार धारा, विद्याएँ, शिक्षा, जीवन-यापन का विधि-विधान, कर्तव्य-कर्म, साधानाएँ इत्यादि) अविवेकपूर्ण, संशयात्मक, विकृतियों या अन्तहीन समस्याओं से युक्त होंगे, ऐसा विचार स्वप्न में भी आना सम्भव नहीं है।

आधुनिक शिक्षित युवक किसी कार्य के कार्यान्वयन के लिये प्रमाण चाहते हैं, तर्क संगत होना चाहते हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि जब स्वदेशी संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाएँ प्रामाणिक, तर्क संगत, समृद्ध तथा वैज्ञानिक हैं, तब फिर इन स्वदेशी भाषाओं की वे अवहेलना क्यों करते हैं। इन स्वदेशी भाषाओं की उपेक्षा मूर्खता ही कहलाएगी।

अन्त में हम यह सूचित करना चाहेंगे कि प्रस्तुत पुस्तक में पिछले संस्करण के कुछ बिन्दुओं का शोधन एवं संवर्द्धन हुआ है तथा प्रकाशक एवं मुद्रक भी भिन्न हैं। लेखक ने स्वयं प्रकाशक का कार्य ग्रहण किया है, अत: प्रस्तुत पुस्तक इस प्रकाशन का प्रथम संस्करण है। पुस्तक के अन्त में आवरण पृष्ठ पर जिन सभी हमारी भारत में छपी पुस्तकों का उल्लेख है उन सभी के अब नवीन संस्करण के प्रकाशक स्वयं लेखक तथा मुद्रक 'त्रिकोण बुक्स' हैं।

आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक भारतीयों में स्वाभिमान व आत्मविश्वास जगाने के कार्य में अवश्य ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी, योगदान करेगी। शेष भगवद् कृपा है।

–शिवकुमार ओझा

◆◆◆◆◆

Scanned by CamScanner